International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
May-June- 2020, Volume-7, Issue-3 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

मीराबाई के पद मे अभिव्यक्त भक्तिभावना का स्वरूप

डॉक्टर सारिका धोंडिराम शेप

सार

भक्तिकाल हिंदी कविता का स्वर्णयुग माना जाता है। जिन भक्त कवियों ने इस काल को स्वर्णकाल बनाने में योगदान दिया है उनमें मीराँ का प्रमुख स्थान है। नि रू संदेह मीराँबाई भक्ति,संगीत व साहित्य की त्रिवेणी है। राजवंश में जन्म लेनी वाली भक्त शिरोमणी मीराँबाई ने भक्ति का जो सन्देश लोक मानस में विस्तारित किया ,वह पदों व भजनों की सरिता के रूप में राष्ट्रीय व राज्य सीमाओं का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय लोकजीवन में प्रभावित हो गया है। ऐसी स्थिति में मध्यकाल के सामन्तवादी माहौल में अवतरित भक्त शिरोमणी मीराबाई के जीवनवृत्त एवं भक्ति पर ऐतिहासिक दृष्टि से पुनर्विचार समसामयिक दृष्टिकोण से आवश्यक व युग की महती आवश्यकता है। मीरों की भक्ति भावना का समकालीन सम्प्रदायों से तुलनात्मक विवेचन करते हुये डॉ .कल्याण सिंह शेखावत अपनी रचना " मीराँबाई का जीवन वृत एवं काव्य " में लिखते है कि मीराँ न तो वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित थी और न निम्बार्क , सखी ,हरिदासी और राधास्वामी सम्प्रदाय से। यदि मीराँ की भक्ति पर कोई प्रभाव था, तो श्रीमद् भागवत् का था और यदि कोई – साम्प्रदायिक प्रभाव खोजा जा सकता है, तो वह था दक्षिण के " पांच रात्र तन्त्र " तथा बंगाल के चौतन्य सम्प्रदाय का। यह भी मीराँ की भक्ति और साधना की नवीन देन ही कही जायेगी कि उसने अपने युग के उत्तर भारत में प्रचलित प्रभावपूर्ण भक्ति और साधना को छोड़कर , दक्षिण और बंगाल में प्रचलित भक्ति और साधना को ग्रहण किया।

कुंजीशब्द ; मीराँ , भक्ति , स्वरूप

प्रस्तावना

राजस्थान की पुनीत – धरा का इतिहास वीरता , बलिदान , भक्ति , त्याग ,आत्मोत्सर्ग ,शक्ति ,साहस व देशभक्ति रूपी आदर्श नैतिक एवं मानवीय गुणों से ओत – प्रोत है। पन्नाधाय की स्वामिभक्ति व त्याग,कुंभा का साहित्यिक व शिल्प प्रेम, स्वतन्त्रता प्रेमी प्रताप , भक्ति रत्न मीराँ जैसे व्यक्तित्व इस वीरभूमि राजस्थान के इतिहास के सुनहरी पन्ने है। इन ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के बारे में जानने व इनसे जुड़े ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी हेतु विश्वभर के लोग इस पावन – धरा में बरबस खींचे चले आते हैं।इस पुनीत धरा राजस्थान ने कई सन्तों व भक्तों को जन्म दिया है। साथ ही कई सन्तों व भक्तों ने इस मरुधरा को अपनी कार्यस्थली बनाया है। राजस्थान के भक्तों व सन्तों में मीराँबाई का स्थान सर्वोपरि है। मीराँ की भक्ति भावना व उनकी पदावली लोकमानस की अनमोल धरोहर है,जो प्रेरणादायी है।इस पुनीत धरा राजस्थान ने कई सन्तों व भक्तों को जन्म दिया है। साथ ही कई सन्तों व भक्तों ने इस मरुधरा को अपनी कार्यस्थली बनाया है। राजस्थान के भक्तों व सन्तों में मीराबाई का स्थान सर्वोपरि है। मीराँ की भक्ति भावना व उनकी पदावली लोकमानस की अनमोल धरोहर है,जो प्रेरणादायी है।

मीराँ प्रथम कोटि की भक्त व संत थी, वे बाल्यावस्था से ही भक्ति भावना से ओत – प्रोत थी। मीराँ की भक्ति कान्ता भाव या माधुर्य भाव की भक्ति थी। उन्होंने गिरधर गोपाल को पति मानकर भक्ति की थी। मीराँ रचित पदों में विरह वेदना की व्याकुलता स्पष्ट दर्शित होती है। मीराँ के पदों की सादगी व सरलता उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। भक्ति , शक्ति , त्याग और बलिदान की पुनीत धरा रंगीला राजस्थान अपनी अनूठी सांस्कृतिक विरासतों हेतु जग प्रसिद्ध है। इस पावन धरा का कणकण वीरों के रक्त से रंजित है ,जिन्होंने आन बान शान हेतु मातृभूमि की सेवा में आत्मोसर्ग कर दिया। वहीं इस

वीरभूमि पर अनेक सन्तों व भक्तों ने भी जन्म लिया ,जिनके प्रति आज भी जनमानस नतमस्तक है। उन भक्तों में भक्त शिरोमणि मीराँ का नाम सर्वोपरि है ,जिनकी उत्कृष्ट भक्ति ने आज भी सदियाँ बीत जाने के बाद उन्हें लोकमानस ने जीवित रखा है।

मीरों को जीवित रखने में इतिहास व साहित्य दोनों स्तरों पर उपेक्षा यी। इसी का परिणाम है कि इतनी सदियां गुजरने के बाद भी इस भक्त कवयित्री के जीवनवृत्त व पदों की प्रामाणिकता विवाद का विषय सुधिजनों के मध्य बने रहे हैं। पाँच सौ बरस के लम्बे कालखण्ड में जनकंठों व सन्तों व भक्तों ने मीराँ को एक सांस्कृतिक विरासत के रूप में जीवित रखा। यही विरासत लम्बे समय तक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती रही।

मीरा की भक्ति भावना

मीरा की भक्ति भावना – मीरा में कृष्ण के प्रति भक्ति–भावना का बीजारोपण बाल्यकाल में ही हो गया था। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि बचपन में किसी साधु ने मीरा को कृष्ण की मूर्ति दी थी और विवाह के बाद वह उस मूर्ति को चित्तौ ले गयी। जयमल–वंश प्रकाश में कहा गया है कि विवाह होने पर मीरा अपने विद्या गुरु पंडित गजाधर को भी अपने साथ चित्तौ ले आयी थी। दुर्ग में मुरलीधर जी का मंदिर बनवा कर पूजा आदि का समस्त दायित्व पंडित गजाधर को सौंप दिया। इस कार्य के लिये गजाधर को मांडल व पुर में 2000 बीघा जमीन प्रदान की जो अद्यावधि उसके वंशजों के पास है। चित्तौड में वह कृष्ण की पूजा–अर्चना करती रही। किन्तु विधवा होने के बाद तो उस पर विपत्तियों का पहा टूट पड़ा, जिससे उसका मन वैराग्य की ओर उन्मुख हो गया और उसका अधिकांश समय भगवद्–भक्ति और साधु संगति में व्यतीत होने लगा। मीरा का साधु संतों में बैठना विक्रमादित्य को उचित नहीं लगा। अतः उसने मीरा को भक्ति मार्ग से विमुख कर महल की चहारदीवारी में बंद करने हेतु अनेक कष्ट दिये। ज्यों–ज्यों मीरा को कष्ट दिये गये, त्यों–त्यों उसका लौकिक जीवन से मोह घटता गया और कृष्ण भक्ति के प्रति निष्ठा बढती गयी। चित्तौड़ के प्रतिकूल वातावरण को छोड़कर वह मेडता आ गयी और कृष्ण भक्ति व साधु संतों की सेवा में लग गयी। मीरा ने अपना शेष जीवन वृंदावन और द्वारिका में भजन कीर्तन और साधु संगति में बिताया। इस प्रकार मीरा की कृष्ण भक्ति निरंतर दृढ होती गयी तथा वृंदावन व द्वारिका पहुँचने तक तो वह कृष्ण को अपने पति के रूप में स्वीकार कर अमर सहागिन बन गयी।

यदि मीरा के पदों का गहन अध्ययन किया जाय तो मीरा की आध्यात्मिक यात्रा तीन सोपानों में दिखाई देती है। पहला सोपान, प्रारंभ में उसका कृष्ण के लिये लालायित रहने का है, जब वह व्यग्र होकर गा उठती है मैं विरहणी बैठी जाग, जग सोवे री आली तथा मिलन के लिए वह तड़फ उठती है, दरस बिन दूखण लागे नैण। दूसरा सोपान वह है जब उसे कृष्ण भक्ति से उपलब्धियों की प्राप्ति हो जाती है और वह कहती है, पायोजी मैंने रामरतन धन पायो मीरा के ये उद्‌गार प्रसन्नता के सूचक हैं और प्रसन्नता में वह पुनः कहती है, साजन म्हारे घरि आया हो, जुगा–जुगारी जोवता, वरहणी पिव पाया हो। तीसरा और अंतिम सोपान है जब उसे आत्म बोध हो जाता है, अँसुवन जल सींच–सींच प्रेम बैल बोई,अब तो बैल फैल गयी आनंद फल होई। सायुज्य भक्ति की चरम सीमा पर खड़ी मीरा बड़े सहज भाव से कहती है मेरे तो गिरध गोपाल दूसरा न कोई। मीरा अपने प्रियतम से मिलकर एकाकार हो गयी है। भक्ति, ईश्वर के प्रति प्रेम रूपा है और प्रेम रूपा भक्ति को प्राप्त करने के बाद न किसी वस्तु की इच्छा रहती है, न शोक रहता है और न द्वेष रहता है और जिसे प्राप्त कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है। मीरा ने वही पा लिया है और मीरा की भक्ति की चरम सीमा भी यही है।

नारी संतों में ईश्वर प्राप्ति हेतु लगी रहने वाली साधिकाओं में मीरा प्रमुख है। उसका भक्ति से ओत–प्रोत साहित्य अन्य भक्तों का भी मार्ग दर्शन करता है।मीरा के काव्य में सांसारिक बंधनों का त्याग एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण भाव मिलता है। उसकी दृष्टि में सुख, वैभव, । सम्मान, उच्च पद आदि मिथ्या हैं, यदि कोई सत्य है तो वह है गिरधर गोपाल। कृष्ण को वह परमात्मा और अविनाशी मानती थी। उसकी भक्ति में ढोंग, आईबर और मिथ्या मान्यताएँ दिखाई नहीं देती, बल्कि भक्ति का सरलतम मार्ग– स्मरण, नृत्य और गायन थे। मीरा ने ज्ञान पर उतना बल नहीं दिया जितना भावना और श्रद्धा पर । मीरा का काल, वह समय था जबकि हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों का संघर्ष, धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता पनप रही थी। इसलिए उसने बल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों से सत्संग तो किया, किन्तु आचार्य जी महाप्रभु की सेविका नहीं बनी। उसने ज्ञानी एवं योगियों से ज्ञान चर्चा तो की, किन्तु आचार्य जी महाप्रभु की सेविका नहीं बनी। उसने ज्ञानी एवं योगियों से ज्ञान चर्चा तो की, किन्तु जोगी होय जुगत न जाणी, उलट जनम री फाँसी को भी वह नहीं भूली। जीव गोस्वामी के पौरुष को ब्रजभाव के नारीत्व से तो रंगा, किन्तु स्वयं कृष्ण की दासी ही रही। वह किसी संप्रदाय विशेष के घेरे में बंद नहीं हुई। डॉ.भगवानदास तिवारी के अनुसार, मीरा का भक्ति मार्ग साम्प्रदायिक पगडंडी न होकर स्वतंत्र राजमार्ग था। उसके विचार अतीत और वर्तमान से संबंधित होकर भी मौलिक थे, परंपरा समर्थित होकर भी पूर्णतः स्वतंत्र थे, व्यापक होकर भी सर्वथा व्यक्तिनिष्ठ थे।

मीरा की भक्ति सगुण थी अथवा निर्गुण, इस संबंध में विद्वानों में मिथ्या मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि मीरा योग अथवा नाथ पंथ से प्रभावित थी। लेकिन मीरा के आराध्य के स्वरूप के विषय में कोई भांति नहीं होनी चाहिए। मीरा का संपूर्ण प्रेम और भक्ति सगुण लीलाधारी कृष्ण के प्रति निवेदित हुआ है जिसका गिरधर नाम ही मीरा को सर्वाधिक प्रिय था। ये ही गिरधर गोपाल मीरा के एकमात्र आराध्य देव थे। कुछ विद्वानों ने यह प्रश्न उठाया है कि जैसे राम शब्द भक्तों और संतों के संदर्भ में सगुण और निर्गुण दोनों का ही वाचक है, वैसे ही क्या मीरा का गरिधर भी निर्गुण ब्रह्म का वाचक नहीं हो सकता? किन्तु मीरा ने अपने अनेक पदों में उसी सगुण साकार कृष्ण को ही अपना आराध्य देव स्वीकार किया है तथा अपने आराध्य के सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरति सांवरी सूरति, नैना बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली, राजति, उर वैजंती माल।।

अतः मीरा की सगुण भक्ति में हमें कोई संदेह नहीं है। जहाँ कभी भी मीरा ने अपने गिरधर के लिये निर्गुण ब्रह्मवाची उपाधियों का प्रयोग किया है, वहाँ भी उसके साथ कृष्ण का सगुण स्वरूप अभिन्न संश्लिष्ट रहा है। जोगी या जोगिया भी वस्तुतः प्रियतम का ही वाचक है। अतः इन शब्दों को लेकर मीरा का नाथ–पंथ या नाथ–संप्रदाय से संबंध जो ना भी

निरर्थक है। सगुणोपासना का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत होता है। अतः कुछ सगुण भक्तों ने अपने आराध्य के गुणगान करने के लिये उसके विशुद्ध निर्गुण रूप का भी स्तवन किया है, किन्तु एकांगी निर्गुणोपासना में सगुण के लिये कोई स्थान हीं होता। ऐसी स्थिति में यदि मीरा ने भज मन चरण कंवल अविनासी कहकर निर्गुण ब्रह्मवाची अविनासी शब्द का प्रयोग कर भी दिया तब भी उसकी सगुणोपासना पर कोई आँच नहीं आती, क्योंकि इसके साथ ही चरण कंवल शब्दों का प्रयोग भी किया है जिसमें सगुण कृष्ण की निर्मल छवि ही मुस्कराती है।

मीरा के समय सामंतवादी व्यवस्था अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी, जिसमें परंपरागत आचार–विचारों, रूढियों, जाति भेद तथा वर्ग भेद का महत्त्व था। ऐसी अवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और नारी के समानाधिकार आदि मूल्यों को कोई स्थान नहीं था। उस प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध मीरा ने विद्रोह का शंखनाद किया जो जन संस्कृति की उत्कर्ष मूलक चेतना का प्रमाण है। अपने विद्रोही स्वर में मीरा ने कहा था

चोरी करूँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज।

पुन्न के मारग चालतां, झक मारो संसार।।

इसमें झक मारो संसार अनीति व्यवस्था के विरुद्ध व्यक्ति स्वातंन्त्रय का स्वर कितनी तीव्रता से फूटा है। वस्तुतः मीरा की काव्य चेतना सामंती परिवेश में पलकर भी लोक धरातल पर विकसित हुई। राजकुल में जन्म लेकर तथा राजकुल की वधु होकर भी मीरा का जीवन अन्तःपुर के प्रकोष्ठ में ही आबद्ध नहीं रहा, बल्कि अपनी व्यापक प्रेमानुभूति एवं भक्तिभावना के कारण उसका व्यक्तित्व अविनासी लोक के साथ एकरूप हो गया। 16 वीं शताब्दी में भक्ति की जिस सरिता का उद्मम मीरा ने किया था, आज भी वह उसी प्रभा से प्रवाहित हो रही है।

भक्ति की प्रेरणा

मीरों की भक्ति भावना को शैशव में ही जन्म देने और उसे सीधे गिरिधर से जोड़ देने में मीराँ के महलों में लगे चतुर्भुज जी के मंदिर के परिवेश की एक विशेष भूमिका थी। इसी के कारण उन्हें किसी गुरु के प्रति समर्पित नहीं होना पड़ा और उनकी भक्ति तथा भावना सम्प्रदायों से मुक्त रही। मेड़ता का राजपरिवार धार्मिक का था। वे वैष्णव भक्त थे तथा भगवान विष्णु के चारभुजा स्वरूप की पूजा करते थे। मेड़ता को अपनी राजधानी बनाने के बाद परम वैष्णव भक्त राव दूदा ने श्री चारभुजानाथ का मन्दिर बनवाया। जो आज भी मेड़ता नगरी की आस्था व श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। आज भी चारभुजानाथ को मेड़तिया राठौड़ अपने कुल देवता के रूप में पूजते हैं व अभिवादन में " जय चारभुजानाथ " का सम्बोधन करते हैं।

मीराँ की भक्ति का मूल्यांकन

गोपीनाथ शर्मा ने " राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास में मीराँ की भक्ति का मूल्यांकन करते हुये उद्धृत किया है कि मीराँ के अवसान को लम्बा समय व्यतीत हो चुका है परन्तु वे हमारे लिए एक समृद्ध भक्ति साहित्य को छोड़ गई है जिन्हें उन्होंने रच रच कर गाया और उसके द्वारा अपना ही नहीं अन्य भक्तों का भी मार्गदर्शन किया। मीरों की अलौकिक दृष्टि में समृद्धि वैभव , भौतिक सुख सुविधा केवल दिखावा है , उनके अनुसार, इन सांसारिक सुखों को त्यागने से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है। मीराँ का धर्म भक्ति था जिसमें रूढ़ियों या परम्पराओं के लिए कोई स्थान नहीं था। मीरों द्वारा भक्ति के सरल मार्ग का अनुसरण किया गया जिसमें उन्होंने गायन नृत्य व कृष्ण स्मरण को महत्त्व दिया था। मीराँ नवयुग की पूरोधा थी। उन्होंने अपनी भक्ति में ज्ञान के स्थान पर भावना पक्ष को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने उच्च सिद्धान्तों व विचारों को सरल भाषा में व्यक्त किया। इसी कारण मीराँ के अनुयायियों व प्रशंसकों में समाज के निम्न से लेकर उच्च वर्ग के लोग शामिल है।

अध्ययन के उद्देश्य

1ण मीराँ की भक्ति का स्वरूप का अध्ययन
2ण मीराँ की भक्ति भावना व भक्ति का स्वरूप का अध्ययन

साहित्य की समीक्षा

भगवती उपाध्याय (2013) के अनुसार , मीराँबाई ने श्रीकृष्ण की प्रेम भक्ति का ही आश्रय किया, ग्रहण किया है। वस्तुत रू उनकी प्रेमाभक्ति मधुराभक्ति ही है। मधुरा भक्ति में भक्त भगवान् को पति या प्रियतम रूप में ग्रहण करता है। जिस प्रकार एक युवती अपने पति या प्रियतम के प्रति ललक उत्साह और आकर्षण से आसक्त होती है , उसी प्रकार भक्त भी तदनुरूप ही भगवान् के प्रति आकृष्ट होता है। स्त्री – पुरुष के प्रेम का आकर्षण लौकिक होता है ; किन्तु प्रेमाभक्ति का आकर्षण अलौकिक होता है। अर्थात् स्वयं ही भगवद् स्वरूप होता है। मीराँ ने श्रीकृष्ण को प्रियतम के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने परमाराध्य श्रीकृष्ण को आजीवन पति माना है। वस्तुत रू मीराँ की मधुरा भक्ति उनकी कान्तासक्ति पर आधारित है।

विश्वनाथ त्रिपाठी (2015) के अनुसार , ' मीराँ मध्यकालीन भक्त कवयित्री है। उनकी कविता में भक्ति – भावना की अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन वे मध्यकालीन सामंती व्यवस्था की पीड़ित नारी , भक्त कवयित्री है। इस पीड़ित नारी को भूलकर उनकी कविता को हृदयगंम नहीं किया जा सकता। मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए " जाति – पांति , धन , घरम , बड़ाई छोड़ता था तो स्त्री को "लोक लाज , कुल श्रृंखला " तोड़नी पड़ती थी। "

कल्याण सिंह शेखावत (2016) के अनुसार , ' मीराँ की अनन्य भक्ति उनके जीवन की थाती बन गई है। इस भक्ति हेतु मीराँ को कई कष्टों का सामना करना पड़ा परन्तु मीराँ ने कभी भी साहस व आशा का परित्याग नहीं किया। राजपरिवार द्वारा दी गई – प्रताड़ना , आतंक व उपहास के बावजूद मीरों की माधुर्य भक्ति सहज रूप से पल्लवित और पुष्पपित होती रही। अन्तत रू विजयश्री मीरों को प्राप्त हुई,उनका सम्मान व भक्ति भाव जग – व्याप्त हो गया। मीराँ तो राणा को भी अपने साथ भवसागर के पार ले जाना चाहती थी , किन्तु श्समझायो समज्यो नहीं सिसोद। मीराँ की भक्ति में बाधाएं उत्पन्न करने वाले इस संसार से विदा ले चुका है व विश्व स्मृति पटल पर उनकी छवि धुंधली हो रही है किन्तु मीराँ के यश का प्रकाश चँह और अपना प्रकाश फैला रहा है। "

नीलिमा सिंह (2017) के अनुसार , " उनकी भक्ति भावना स्वत रू स्फूर्त और स्वत रू प्रेरित है। भक्ति उनके लिए न साधन है और न साध्य। वह स्वयं भक्तिमय है। श्रीकृष्ण से प्रेम करने के लिए उन्होंने किसी विशेष विचार – पद्धति का अनुगमन नहीं किया है। वह सही अर्थों में एक उन्मुत्त भक्त है। इसीलिए उन्हें उसी तराजू पर नहीं तोला जा सकता है , जिस पर उस युग के अन्य प्रसिद्ध भक्त एक – एक करके तुल चुके हैं। "

अनुसंधान क्रियाविधि

द्वितीयक स्रोत

माध्यमिक डेटा कई संसाधनों से एकत्र किया जाता है जैसे विभिन्न पुस्तकालयों , पुस्तकों , शोध पत्रिकाओं , इंटरनेट , पत्रिका , और समाचार पत्रों में साहित्यिक कॉलम , आधिकारिक वेबसाइट

डेटा विश्लेषण

समकालीन सम्प्रदायों से तुलनात्मक अध्ययन

मीरों के समय सामाजिक परिस्थितियाँ संक्रमणकालीन थी। हिन्दु मुस्लिम संस्कृतियों का संघर्ष , धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता पनप रही थी। लेकिन मीराँ ने साम्प्रदायिकता के क्षुद्र घेरे में घिरी हुई संकुचित मनोवृत्ति को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उसने वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों से सत्संग तो किया , किन्तु उनके सतत् प्रयासों के बावजुद वह श्आचार्य जी महाप्रभुश् की सेविका नहीं हुई। उसने ज्ञानी व योगियों से चर्चा तो की , किन्तु जोगी हो या जुगल ना जाणा , उतर जनम की फांसी , को भी वह नहीं भुली। जीव गोस्वामी के पौरुष को वज्रभाव के नारीत्वश् से तो रंगा , किन्तु स्वयं कृष्ण की दासीश् हुई। उसके मन्दिर के द्वार सबके लिए खुले थे , किन्तु वह किसी सम्प्रदाय विशेष के कठघरे में बन्दिनी नहीं हुई। मीराँ का भक्ति मार्ग साम्प्रदायिक पगडण्डी न होकर स्वतन्त्र राजमार्ग था। उसके विचार अतीत और वर्तमान से सम्बद्ध होकर भी मौलिक थे , परम्परा समर्थित होकर भी पूर्णत रू स्वतन्त्र थे। व्यापक होकर भी सर्वथा व्यक्तिनिष्ठ थे।

जिस समय राजस्थान में जांभोजी , जसनाथजी , दादू , लालदास आदि सन्तों द्वारा धार्मिक समन्वय व समाज सुधार सम्बन्धी प्रयास किये जा रहे थे , उसी समय राजस्थान में सगुण भक्ति रस की धारा प्रवाहित हुई , जिसका विशुद्ध स्वरूप हम मीराँ की भक्ति में देखते हैं।

मीरों की भक्ति भावना का समकालीन सम्प्रदायों से तुलनात्मक विवेचन करते हुये डॉ .कल्याण सिंह शेखावत अपनी रचना" मीराँबाई का जीवन वृत एवं काव्य " में लिखते है कि मीराँ न तो वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित थी और न निम्बार्क , सखी ,हरिदासी और राधास्वामी सम्प्रदाय से। यदि मीराँ की भक्ति पर कोई प्रभाव था , तो श्रीमद् भागवत् का था और यदि कोई – साम्प्रदायिक प्रभाव खोजा जा सकता है , तो वह था दक्षिण के "पांच रात्र तन्त्र "तथा बंगाल के चौतन्य सम्प्रदाय का। यह भी मीराँ की भक्ति और साधना की नवीन देन ही कही जायेगी कि उसने अपने युग के उत्तर भारत में प्रचलित प्रभावपूर्ण भक्ति और साधना को छोड़कर,दक्षिण और बंगाल में प्रचलित भक्ति और साधना को ग्रहण किया। भक्ति और साधना के क्षेत्र में, मीराँ का यह कदम क्रांन्तिकारी ही कहा जायेगा क्योंकि उत्तर भारत के प्राय रू सभी वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय,इस बात के लिए पूर्ण प्रयत्नशील थे कि " येन – केन प्रकारेण " मीरों को अपने सम्प्रदाय विशेष में सम्मिलित कर लिया जाय। किन्तु अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी मीराँ ने उत्तर भारत के वैष्णव सम्प्रदायों से न दीक्षा ग्रहण की , न साधना पद्धति और न गुरू ही।

डॉ . पेमाराम के अनुसा ,जिस समय राजस्थान में जांभोजी ,जसनाथजी ,दादू ,लालदास आदि सन्तों द्वारा धार्मिक समन्वय व समाज सुधार सम्बन्धी प्रयास किये जा रहे थे ,उसी समय राजस्थान में सगुण भक्ति रस की धारा प्रवाहित हुई,जिसका विशुद्ध स्वरूप हम मीराँ की भक्ति में देखते है।

निर्गुण सम्प्रदाय और मीरा

मीराँ की भक्ति और निर्गुण सम्प्रदाय की तुलनात्मक विवेचना करते हुये डॉ .कल्याण सिंह शेखावत कहते हैं कि मीराँ के प्रभु , धार्मिक आस्था तथा उपासना भक्ति निर्गुण सम्प्रदाय से मेल नही खाती। मीराँ के प्रभु सगुण साकार , दिव्य , अवतारी और पूर्ण परमात्मा है जबकि निर्गुणी निरंजन , अनाम और विराट है। वह मन वाणी और चक्षु से अगोचर है। निर्गुणी अवतारवाद में आस्था नही रखते है। मूर्तिपूजा, उपासना के निर्गणी विरोधी है , जबकि मीरों के प्रभ समय समय पर अवतार लेते है दुष्टों का दहन करते है , मीराँ उनकी मूर्तिपूजा में आस्था रखती है। नितनेम और चरणामृत जैसे बाह्यआडंबर करती है। धूपदीप से पूजन करती है। मीराँ अपने प्रभु के लीलाधामों की यात्राओं को महत्व देती है ,जबकि निर्गुण सम्प्रदाय के लिये इनका कोई महत्व नही है। निर्गुण ब्रह्म अजन्मा ,अमूर्त तथा अज्ञेय है किन्तु मीराँ के आराध्य जन्म लेते है , इस धरती पर लीला करते है। मीराँ पूर्व जन्म और भाग्यवादिता को मानती है जबकि निर्गुण सम्प्रदाय पूर्व जन्म को नहीं मानता।

इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों के ,मीराँ भक्ति भावना से तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि उन्होंने किसी भी सम्प्रदाय विशेष का अवलम्बन नहीं। उनकी भक्ति में विभिन्न सम्प्रदायों की विशेषताएं होकर भी ,वे किसी मत की अनुगामी नहीं बनी। उनकी भक्ति एक स्वतन्त्र राजपथ जो सम्प्रदायवाद के बंधनों से पूर्णतया विमुक्त था। उन्होंने सम्प्रदाय विहिन भक्ति की प्रेरणा दी थी।

वस्तुत रू मीराँ की भक्ति भावना में कुछ ऐसे विशेष तत्वों का सामंजस्य था , जिसके कारण विभिन्न सम्प्रदायों ने उन्हें अपने – अपने सम्प्रदायों में शामिल करने का प्रयास किया। परन्तु मीराँ ने किसी भी सम्प्रदाय से दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। विभिन्न भक्ति तत्वों के आधार पर मीराँ की भक्ति में अनेक सम्प्रदायों का प्रभाव बताया जाता है। मीराँ की भक्ति भावना में सगुण व निर्गुण भक्ति दोनों की विशेषताएं पायी जाती है। परन्तु उनकी विचारधारा सगुण भक्ति के अधिक निकट मानी जाती है।

निष्कर्ष

मीरों की प्रासंगिकता इसी तथ्य से जाहिर है कि वह मानवजाति की उन्नति हेतु पथ प्रदर्शक का काम करती है। " मीराँ संबंधी अध्ययन, अनुशीलन ,उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व अधावधि आमजन व विद्वजनों हेतु प्रेरणा का स्तोत्र है। वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता व महत्त्व इस बात का प्रमाण है कि समय के साथ मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है व वर्षों से भुला दिये जाने वाले व्यक्तित्व पुन: ऐतिहासिक पटल पर अवतरित होते हैं। इस दृष्टि से मीराँ स्वयं एक प्रभावी हस्ताक्षर है। मीराँबाई वर्तमान में भारत की सीमाओं को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व बन गयी है। मीराँबाई राजस्थान का ही नहीं , भारतदेश का गौरव है। मरुभूमि यह पावन गंगा बहते हुये ,अपने जीवन को सार्थक करते हुये अन्तत:द्वारका में अनन्त समुद्र में विलिन हो गयी थी। मीराँबाई भारतीय जनमानस में आस्था व श्रदधा की प्रतीक है। आज सम्पूर्ण विश्व उनके जीवन,व्यक्तित्व व भक्ति के बारे में जानकारी चाहता है। मीराँबाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का नारी सशक्तीकरण, सामाजिक ,सांस्कृतिक राष्ट्रीय योगदान पर चिंतन मनन इस शोध प्रबन्ध की आधारशिला है। यह शोध उसी जिज्ञासा को मिटाने का एक छोटा सा प्रयास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भगवती उपाध्याय (2013) मध्यकालीन भारत , प्रयाग प्रकाशन इलाहबाद , 2010–11-
2. विश्वनाथ त्रिपाठी (2015) मेवाड़ राज्य का इतिहास , भाग प्रथम , महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन , ट्रस्ट , 2007
3. कल्याण सिंह शेखावत (2016) मेवाड़ का इतिहास , मोतीलाल बनारसीदास , 1986
4. नीलिमा सिंह (2017) मेवाड़ के राजाओं की राणियों , कुंवरों और कुंवरियों का हाल (सं . देवीलाल पालीवाल) साहित्य संस्थान , राजस्थान विद्यापीठ , उदयपुर , 1984
5. कालुराम शर्मा (2014) राजस्थान का इतिहास , पंचशील प्रकाशन , जयपुर , 1987
6. कालूराम शर्मा एवं प्रकाश व्यास (सं) (2004) राजस्थान के इतिहास की रूपरेखा , पंचशील प्रकाशन
7. के . सी . श्रीवास्तव (2007) प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति , युनाईटेड बुक डिपो , इलाहाबाद , ग्याहरवा संस्करण
8. हरिशचन्द्र वर्मा (सं) (2013) मध्यकालीन भारत , खण्ड प्रथम,हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय , दिल्ली , तृतीय संस्करण
9. हीरालाल माहेश्वरी (2014) हिस्ट्री ऑफ राजस्थान लिटरेचर , साहित्य अकादमी
10. हरविलास शारदा रू महाराणा सांगा , राजस्थानी ग्रंथागार , जोधपुर

11. हकम सिंह भाटी (2015) राजस्थान के मेडतिया राठौड़ (1458–1707ई) , राजस्थानी ग्रन्थागार , जोधपुर
12. हुकम चन्द जैन एवं नारायणलाल माली (सं) (2016) राजस्थान का इतिहास , कला , संस्कृति , साहित्य , परम्परा एवं विरासत , राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , जयपुर .